OMPRAKASH VALMIKI - A CONVEYOR OF DALIT CONSCIOUSNESS

Dr. J. SENTHAMARI
Associate Professor & Head, Department of Hindi
Seethalakshmi Ramasawmi College, Trichy, Tamil Nadu, India

दलित साहित्य आधुनिक भारतीय साहित्य की एक विशिष्ट के रूप में उभरकर आज हिन्दी वाड़्मय की मुख्य धारा से जुड गया है। साहित्य की यह अव्यन्त वेगवती अद्यतन धारा अनेक अवरोधों-विरोधों के बावजूद लगभग अप्रभावित और अबाधित प्रवाह के साथ गतिशील हैं। दलित साहित्य आधुतिक संदर्भो में प्रगतिशील साहित्य की नवीनतम संस्करण है। आज हिन्दी साहित्य नई दशा-दिशा, स्त्रीविमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श, अल्पसंख्याक विमर्श, युवा विमर्श के आंदोलन को लेकर जोर पकड़ता हुआ दृष्टिगोचर हो रहा है।

हिन्दी साहित्य में दलित साहित्य का बीजारोपन प्रेमचन्द साहित्य से माना जा सकता है। दलित साहित्य कहानी, कविता, उपन्यास, आत्मकथा, संगोष्ठी, सम्मेलन विभिन्न्ा साहित्यिक पत्र-पत्रिकाएँ, शोध पत्रिकाएँ, शोध ग्रंथों के माध्यम से आज प्रस्तुत है। मोहन्दास नैमीषराय, ओमप्रकाश वाल्मीकि, हीशडोम, डॉ.सूर्यनारायण रणसुभे, दया पवार, मणि मधुमकर, डॉ.सी.बी भारती, डॉ. दयानन्द बटोही, सुशीला टाकभोरे कवल भारती, डॉ. पे्रमशंकर, जयप्रकाश कर्दप, कौशल्या बैसंत्री, डॉ. सुमनपाल, कुसुम वियोगी आदि के विशाल और शक्तिशाली रूप में यह साहित्य उभरकर आ रहा है।

हिन्दी साहित्य का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि कई हिन्दी साहित्यकारों की
कृतियों में दलित साहित्य की उत्कृष्ट आभिव्यक्ति हुई है। हरिजन गाथा-नागर्जुन
सद्‌गति, ठाकूर का कुऑ, कफन-प्रेमचन्द, मोचीराम-धूमिल, कुल्लीभाट, चतुरी चमार
-निराला,नाच्यों बहुत गोपाल-अमृतलाल नागर, महाभोज-मन्न्ाुमंडारी , कोर्ट मार्शल-स्वदेश दीपक आदि।

आठवे-नवें दशक में सर्वहारा दलित वर्ग जाग चुका है। अब वह अपने ऊपर जबरन थोपी गई दीनता-हीनता से ऊब चुका है और मरने-मारने पर उतारू होने के अतिरिक्त उसके पास कोई विकल्प नही बचा है। फलस्वरूप इस काल की कहानियाँ सामन्तों , शोषकों , पूँजीपतियों के विरूद्ध संघर्षशील अथवा संघर्ष के लिए तैयार आदमी को चित्रित करती हैं। 'गुस्से में आदमी ' (जवाहर सिंह) , 'सुरंग में पहली सुबह,' 'ऐसे मौसम में वापसी ' (बसन्त कुमार), 'भीतर का भय' (श्रीहर्ष), 'बन्तो' , 'अँधेरे की मौत', 'एक निर्णय', 'सन्नाटे से आगे', 'परतें', 'मुक्ति', 'संघर्ष है', (नमिता सिंह) 'विस्फोट' (विजेन्द्र अनिल), 'करिश्मा' (नीरज सिंह), 'एक बनिहार का आत्म निवेदन', 'दूसरा कदम', 'एक होते हुए', (सुरेश कांटक), 'काले पेड़', 'रिक्शा वाला' , 'समूह गान', 'अन्तिम प्रजापति' (राकेश वत्स), 'देवी सिंह कौन', 'शंख ध्वनी ', 'राष्ट्रीय राजमार्ग', (रमेश उपाध्याय), 'जंगली जुगरिफिया' (रमेश बतरा), 'भइया एक्सप्रेस'(अरूण प्रकाश), तथा 'उठो लक्ष्मी नारायण' (सुरेश मेनन), 'संवेदना और प्रतिकार' (पुत्री सिंह), 'अस्वीकृत' (गिरिराज शरण अग्रवाल), 'जुगाड़' (प्रेम कुमार मणि), 'बहू जुठाई' (रमणि गुप्ता), 'नंबर' (राजकुमार सिंह), 'त्रिशूल' (शिवमूर्ति), 'तालीम' (अवधेश प्रीत), 'मनु' (ह्रदयेश), इसी भाव-बोध की कहानियाँ हैं जिसमें दलित वर्ग का हर कुनबा एक संकल्प विशेष से भरा, खड़ा दिखाई देता हैं,जिसमें सब कुछ बदल डालने,सब कुछ अपने अनुकूल करने की जिजीविषा है, वह जिजीविषा जिसमें अपने लक्ष्य तक पहुँचने के लिए साधारण जन की संघर्ष हेतु लम्बी लड़ाई हेतु एकजुटता है और कहानीकार भी समूचे भारत के दलित, पीड़ित, शोषित वर्ग के मन के रेशे-रेश को अलगाने में सफल हुए हैं, चाहे वे नारी हों या पुरूष।चाहे वे सामाजिक व्यवस्था के शिकार हों या आर्थिक विडम्बना की

परिणति,चाहे वे व्यवस्था से पीड़ित हों अथवा सरकारी रीति-नीति के शिकंजे में पिस रहे हों, सब तो यहाँ उपस्थित हैं, सभी को यहाँ वाणी मिली, सभी एक हैं, अलग-अलग किए जाने के प्रयास के बावजूद।

समकालीन हिन्दी कहानी दलित चेतना की संवाहक है। वह पीड़ित, शोषित, दलित वर्ग की कथा तो है , पर केवल दलित द्वारा कही गई कथा नहीं। यह वर्ग विशेषकर स्वतन्त्रता के बाद पनपे इस वर्ग की कथा-व्यथा के हर कोने को झाँक आए हैं-समकालीन हिन्दी कहानीकार।

ओमप्रकाश वाल्मीकि की सलाम कहानी में शादी के पश्चात् ससुराल के गाँव में सवर्ण रांघड़ों के घरों में सलाम करने जाने से हरीश इन्कार करता है। हरीश एक पढ़ा-लिखा युवक है जो अपमानजनक परम्परा का खुलकर विरोध करता है और संघर्ष के लिए आतुर हो उठता है। हरीश आत्मविश्वास का पुतला दिखाई पड़ता है। इनकी दूसरी कहानी है-'पच्चीस चैका डेढ़ सौ। वस्तुतः अशिक्षा का मारा सुदीप का पिता चैधरी की चालों को समझ नहीं पाता किन्तु जब उसका शिक्षित पुत्र उसे समझाता है तब उसे पचास रूपये का नुकसान समझ में आता है और वह चैधरी को कोसता है, शोषण आधृत है यह कहानी। 'अंधड़ अम्मा ' भी शिक्षा के महत्व को दर्शने वाली कहानी है। इस कहानी की एक और विशेषता है-वाल्मीकि यह अनुभूत करते हैं कि शिक्षित दलित अपने घर, अपने लोगों से विमुख हो रहे हैं। यह यथार्थ भी है। और ऐसे शिक्षित दलितों पर वे करारा प्रहार करते हैं।

हिन्दी दलित कहानी में ओमप्रकाश वाल्मीकि का विशिष्ट स्थान है। यह स्थान मात्र नहीं, बल्कि कहानी का प्रस्थान-बिन्दु भी है। कहानी के इतिहास में प्रेमचंद के बाद सबसे सशक्त और दलित जीवन पर केंद्रित कहानियों के लिए मील का पत्थर है'सलाम'। इसमें दलित जीवन की वे यंत्रणाएँ हैं जो दलित हर गली-चैराहे और कदम-कदम पर भोगते रहे हैं।

'सपना' कहानी का गौतम एस.सी. होने के कारण मंदिर निर्माण में सबकुछ करने के बाद भी मात्र इसलिए तिरस्कृत किया जाता है कि वह अछूत है। यहाँ वाल्मीकि की यह विशिष्टता दिखाई देती है कि वे ऐसी घृणित मानसिकता के विरुद्ध विद्रोह का बिगुल बजा देते हैं लेकिन एक विशेष बात दृष्टव्य है कि इनके यहाँ वाद का विरोध है किसी जाति का नहीं। यही कारण है कि गौतम के अपमान पर ऋषि (ब्राह्मण होते हुए भी) गौतम का हाथ पकड़कर सबसे आगे चलता है और इन कर्मकांडियों के पंडाल के बाँस उखाड़ता है।

'बैल की खाल' शीर्षक कहानी के 'कालू' और 'भूरे' दलित, उपेक्षित और अछूत हैं लेकित पंडित बिरिज मोहन के बैल के मरते ही वे ढूँढ़े जाते हैं। अचानक उनकी मूल्यवता बढ़ जाती है। एक खाल के लिए अनगिनत गालियाँ। दलित जीवन की यही व्यथा-कथा लेखक को एक बड़ा और संवेदनशील कथाकार बनाती है। वे दलित जीवन के कर्म को बड़ी गहराई से रेखांकित करते हैं। उसकी विवशता को बड़ी कलात्मकता से उकेरते हैं। इस प्रकार इनकी कहानी कथन की शैली विशिष्ट बन जाती है।

'सलाम' कहानी संग्रह की 'भय' कहानी अपने शिल्प में अत्यंत सधी-बँधी कहानी है। अपने छोटे कलेवर में भी बहुत कुछ समेटे इस कहानी के नायक दिनेश के अंतद्र्वन्द और दलित जीवन के मध्य नित्य प्रति भोगी रुढ़ियों और परंपराओं की सड़न से पैदा हुई है जिसे दिनेश भोगता है। कहानीकार, जो दलित समाज के जितनी बाहर है उतनी ही भीतर भी। इसलिए वह भीतर-बाहर दोनों को शुद्ध और निर्मल बनाना चाहता है।

'कहाँ जाए सतीश' का कथानायक सतीश पढ़ाई के लिए घर छोड़कर भी पहचाना जाता है। वह जाति पहचाने जाने के भय से किराए पर घर न मिल सकने के कारण एक रवि शर्मा को साथी बनाकर पंत के घर शरण पाता है और एक दिन उसके माँ-बाप के आ जाने पर मिसेज पंत को उसकी जाति की भनक जग जाती है। इस आशंका से कि वह डोम है मिसेज पंत को उसके कपड़ों से गंध आने लगती है और उसे अपने घर से निकालने पर आमादा हो जाती है। सुदर्शन पंत मध्यस्थ रवि शर्मा से बात करने को कहते हैं तो मिसेज पंत बिफर पड़ती हैं कि , ''रवि

शर्मा से बात क्या करना है...... उसे भी अपने घर में घुसने नहीं दूँगी..... पता नहीं शर्मा है भी या नहीं ..... कहीं वह भी चूहड़ा-चमार ही न हो।''

सतीश जैसे पात्र को रेगमाल से कहानीकार दलित जीवन के लोहे पर हजारों साल से लगी जंग छुड़ाना चाहता है। वह अपने पिता की इच्छा के विरुद्ध जाता है और नगरपालिका की बदबूदार घिसी-पिटी झाडू छोड़कर मान-सम्मान की जीविका चाहता है।

'गोहत्या' कहानी में मुखिया और सरपंच के आंतकी साये में जीवन ढोते दलित जनों की कथा है। कब कौन सरपंच या मुखिया किसी 'सुक्का' को गोहत्या का दोषी ठहरा कर फाँसी पर लटका दे। इनके षड्यंत्रों के शिकार बनकर जाने कितने सुक्का परलोक सिधार गए। यह सुक्का कोई अपवाद नहीं है। यहाँ भी मुखिया की हँसी सुक्का की बेबसी का उपहास करती है। इस तरह से गोहत्या के पाप से मुक्त होते समाज की विडंबना का चित्रण करते हुए कहानीकार एक अंधविश्वास और रूढ़ि समाज के साथ,एक ऐसे संवेदनशील समाज की रचना करना चाहता है,जहाँ जाति के इन जटिल बंधनों से मुक्त स्वतंत्र और मानवीय जीवन है।जहाँ पशु से अधिक मूल्यवाल है मनुष्य।

'ग्रहण' कहानी नारी जीवन पर जबरन आरोपित जानेवाले बाँझपन के अनावश्यक बोझ की कथा है। यह ऐसा बोझ है जिसे कोई भी नारी असहज हुए बिना नहीं ढो सकती यह बोझ ढोती है बिरम की बहू। वह मार भी खाती है लेकिन चाँद में लगने वाले ग्रहण में उसे मुक्ति का द्वार दिख जाता है। 'ग्रहण' का रमेसर बिरम की बहू तो उद्धार कर देता है लेकिन स्वयं उसका उद्धार कौन करेगा ?इस प्रश्न का उत्तर न तो बिरम की बहू के पास है न ही उसे लांछित करनेवाले उसी के तथाकथित अपने सवर्ण समाज के पास।

घुसपैठिये संग्रह में लेखक स्वयं यह घोषणा करती है कि ये कहानियाँ अन्य सिद्ध और प्रसिद्ध कहानियों जैसी नहीं हैं क्योंकि इनमें पराकाया प्रदेश की कला नहीं अपितु स्वयं का भोगा हुआ यथार्थ संवेदना के धरातल पर उत्तरोत्तर और सघन और गहरा होता चला गया है। परिणामतः इसमें ओमप्रकाश वाल्मीकि के निजी जगत का समान्यीकरण और सामाजीकरण हो गया है। वे स्वयं लिखते हैं कि,''इन कहानियों की अंतर्वस्त मेरे अनुभव-जगत की त्रासदियों और दुखों से उपजी सामाजिक संवेदनाएँ हैं जिन्हें शब्द दर शब्द गहरे अवसादों के साथ यंत्रणा से गुजरते हुए लिखा है।''

वे आगे कहते हैं, सच तो यह है कि मैंने जैसा जीवन देखा-भोगा, महसूस किया वैसा ही लिखने की,दिखाने की कोशिश की। मेरे इर्द-गिर्द की दुनिया अश्लील है तो इस अश्लीलता को मैं शब्दों के किस आवरण से छिपाने की कोशिश करता ? जीवन की नग्नता मात्र शब्दों से अभिव्यक्त नहीं होती है, स्थितियाँ और सामाजिक मान्यताएँ भी अश्लील होती हैं जिनका सीधा ताल्लुक संस्कारों और परिवेश से होता है।'' - ओमप्रकाश वाल्मीकि

ये कहानियाँ गल्प नहीं दलित जीवन का दस्तावेज हैं। इनका प्रत्येक शब्द दलितों का वह मंत्र है जो पढ़-सुनकर उन्हें मुक्ति दे सकता है। यह मुक्ति ऊर्ध्वगामी तो है पर मोक्षकामी कदापि नही। इसमें धरती को ही स्वर्ग बनाने का आह्वान है न कि स्वर्ग-गमन की प्रत्याशा। ऐसे साहित्य को पढ़कर दलित-जीवन में गुणात्मक परिवर्तन विकसित हो रहे हैं।

इस संग्रह की शीर्षक कहानी है 'घुसपैठिये'। इसमें आरक्षण जैसे राजनीतिक मुद्दे की सामाजिक और आर्थिक महत्ता को भी रेखांकित किया गया है लेकिन इसमें जो सबसे महत्वपूर्ण बात सामने आती है वह ये है कि इस राजनीति खेल में समाज की संवेदनशीलता मर रही है। इससे सारा समाज दो खेमों में बँटा ही नहीं है, वह दूसरे खेमे के प्रति संवेदन शून्य भी हो गया है। इस राजनीतिक खेल में निरपराध लोग भी बेमौत मारे जाएँगे, चाहे वे दलित हो या सवर्ण।

‘घुसपैठिए’ में मेडिकल कॉलेज के दलित छात्रों को दूसरे छात्रा ही नहीं प्राध्यापक, डीन, प्रिंसिपल, मैनेजमेंट भी घुसपैठिए मानता है।कोटे में आए छात्र इस अन्याय के विरुद्ध जब आवाज उठाते हैं, तो उनसे मारपीट की जाती है। विरोध दर्शाने पर तथा पुलिस में रिपोर्ट लिखवाय जाने के कारण दलित छात्र सुभाष सोनकर को फेल कर दिया जाता है। फलस्वरुप निराश सोनकर आत्महत्या कर लेता है।

‘यह अंत नहीं’ आज़ादी के स्वराज, सुराज और आज के पंचायती राज पर गहरा कटाक्ष करती है। इसके साथ ही भारतीय समाज की जर्जर काया को भी नाकाम साबित करती है। यह आंबेडकर दर्शन के स्वाभिमान, आत्मसम्मान, आत्मविश्वास, संघर्ष और संगठन को अर्थ देने का भी काम करती है। कहानीकार इन्हें अर्थवत्ता प्रदान करने के लिए ‘बिरमा’ जैसी सशक्त नारी पात्र की सर्जना भी करता है।

नारी को विवशता और सतीत्व का जामा पहनाकर मात्र भोग्या बनाकर वस्तुवत रखे जाने के पक्षधर दकियानूसी समाज से डरकर न तो स्वाभिमान की रक्षा की जा सकती है और न सम्मान की। इनके लिए तो आत्मविश्वास जगाना ही पड़ेगा और अधिकारों के लिए लड़ना भी। चुप्पी मार कर बैठ जाना समस्या का न तो समाधान है और न ही उसका अंत। इसलिए ‘यह अंत नहीं ’ कहानी दलितों के सम्मानार्थ संगठित होकर संघर्ष की प्रेरणा देती है।प्रवीण जैसे कानूनदाँ भी संगठन के अभाव में थाने से पिटकर वापस आते रहेंगे। झूठ की नींव पर खड़ी पंचायतें भी इसी संगठनिक अभाव का लाभ उठाकर अनाप-शनाप फैसले सुनाती रहेंगी कि , “सचीन्दर वल्द तेजभान ने बिरमा वल्द मंगलू के साथ राह चलते छेड़खानी करने की कोशिश की। भविष्य में ऐसी घटना न हो , इसलिए पंचायत सचींदर पर पाँच रुपया जुर्माना करती है।” क्या यही सुराज है या स्वराज का स्वर्णिम रूप पंचायती राज ? इसलिए तो ओमप्रकाश वाल्मीकि जैसे सजग कहानीकार को संकल्प करवाना पड़ता है कि , “ना बिरमा यह अंत नहीं है। तुमने हमें ताकत दी है। हम हार को जीत में बदलेंगे-लोगों में विश्वास जगाकर,ताकि फिर कोई बिसन मोहरा ना बने।” - ओमप्रकाश वाल्मीकि

‘मुंबई कांड’ कहानी आस्था पर की जाने वाली चोट के घातक प्रभावों से बने घावों की उपचार कथा भर नहीं है , उसकी औषधि भी है। अपनी आस्था पर चोट का बदला दूसरे की आस्था को आहत करके कदापि नहीं लिया जाना चाहिए। अत्यंत जटिल कथानक वाली इस कहाती का निर्वाह और प्रवाह अत्यंत सरल है। मुंबई कांड’ कहानी का प्रमुख पात्र ‘सुमेर’ अपनी आस्था पर हुई चोट का बदला लेने के लिए कई रास्ते खोजता है। यहाँ तक कि उसके मन में आत्मदाह का विचार भी घुमड़ता है पर वह इसे भी छोड़ देता है। कहानीकार बड़ी कुशलता से इस कहानी का ताना-बाना बुनता है। वह दलित समाज को आत्महत्या का रास्ता नहीं संघर्ष का रास्ता सिखाना चाहता है। यही कारण है कि सुमेर के मन में आत्मदाह का विचार कौंध कर भी परिणाम नहीं बन पाता।

दलितों में भी व्यथा कथा कहती है ‘शवयात्रा’। यह ऐसी शवयात्रा है जिसमें शवसाधना अंततः शिवसाधना का मार्ग प्रशस्त करती है। अपनों के बीच की ये दीवारें कितनी निर्दय और अपारदर्शी हैं?इन्हें तोड़ना भी नितांत आवश्यक है। तभी तो एक दलित दूसरे की व्यथा-कथा का सच्चा सहभागी बन सकता है अन्यथा इन दीवारों के रहते हुए दलित समाज की व्यथाएँ इस दीवार के पीछे भी दम तोड़ती रहेगी। इस कहानी से स्पष्ट है कि दलित साहित्यकार कबीर की भाँति अपने दलित-शोषित भाइयों को बाहर-भीतर चोट देकर कैसे सुधार रहा है। यह सुधार दलित समाज के भीतर भी जारी है और उसके बाहर संपूर्ण मानव समाज में भी।

‘कूड़ाघर’ कहानी आरक्षण के मूल बिंदुओं की बड़ी सूक्ष्मता से जाँच-परख करती हुई भूख और बाजारवाद से भी दो-दो हाथ करती है। भूख और श्रम की टूटन को अर्धनग्न चित्रों से चिढ़ाने की साजिश का पर्दाफाश करती है ‘कूड़ाघर’।

यह उपभोक्तावादी सामंती समाज ही वह कूडाघर है जिसकी सड़ॉध से अजब सिंह और उसकी पत्नी सुमित्रा का दम घुट रहा है।वह जाए भी तो कहाँ? अंततः इसी कूडाघर के एक कोने से हटकर किसी अन्य कोने में व्यवस्थित होना है। जिस समाज का कोना-कोना कूड-कचरे से भरा है वहाँ दुर्गंध तो होगी ही। इसी दुर्गंध से मुक्ति की राह खोजते 'कूडाघर' कहानी के 'अजबसिंह' और 'सुमित्रा' का संघर्ष लंबा होते हुए भी अनंत नहीं है। इसी अन्वेषण का फल है कि दुर्गंध कम हो रही है और एक दिन वह समय भी आ जाएगा जब यह कूडाघर एक स्वच्छ और सुंदर आवास योग्य घर में परिवर्तित हो जाएगा।

"मैं ब्राह्मण नहीं हूँ " जातीय मकड़जाल में उलझे उन दो परिवारों की कथा है जो जाति बदल कर जातिवाद की कठोर संरचना को और अधिक फौलादी बना देते हैं। यह ऐसे दो व्यक्तियों की कथा है जो सवर्ण समाज के बुने जाल में मच्छर और मक्खी की भाँति स्वतः फँस जाते हैं। ये हैं "मोहन लाल मिरासी' और 'गुलजारी बढ़ई' जो ऊँची कही जाने वाली जातियों में से ब्राह्मणों के शर्मा आश्पद को चुनते हैं। धीरे-धीरे ये उनके अलंकरण बन जाते हैं। इस झूठे आभूषण पर वे इतने मोहित हो जाते हैं कि उनके सगे-संबंधी तक छूट जाते हैं।

जाति-पाँति के इस घिनौने खेल से दोनों को बचना है ,दलितों को भी और सवर्णों को भी। मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा में कोई जाति नहीं बल्कि मनुष्य ही योगदान कर सकता है। इसके लिए सबसे पहले आवश्यक हो जाता है इंसानी मूल्यों की प्रतिष्ठा और इन मूल्यों की प्रतिष्ठापना ढृंढ़ता के साथ इस कहानी में विद्यमान है।

'ब्राह्मस्त्र', 'घुसपैठिये' संग्रह की जातिवादी व्यवस्था की चूल हिला देने वाली कहानी है जिसमें पंडित माधव प्रसाद भट्ट का जातिवादी ब्राह्मस्त्र 'अरविंद' और 'कॅवल की मैत्री पर चल ही जाता है। भले ही इन दोनों के बीच 'जात-पात कभी नहीं आई' लेकिन पं.माधव प्रसाद भट्ट को लाना आता था। वे क्या प्रायः संपूर्ण सवर्ण समाज इस काल में पारंगत है। ऐसे में अकेले पंडित का क्या दोष? इन पंडितों की पंडिताई इसी में है कि कब अच्छे भले रिश्तों को धूल चटाकर उस पर वर्ण व्यवस्था की विजय पताका फहरा दें।

निष्कर्ष

हिन्दी-कहानी, विशेषकर 1975 के पश्चात् की कहानी दलित-वर्ग के साथ व्यापक धरातल पर जुड़ने के लिए उद्यात दिखाई देती है।समाज का पीड़ित, शोषित, अस्पृश्य दलित हर वर्ग इस साहित्य में स्थान पा रहा है।इनमें किसान भी हैं, मजदूर भी ,आदिवासी भी हैं, और शहरी लोग भी, नारी भी है, पुरुष भी। और इन सबकी उपस्थिति साहित्य के व्यापक सरोकार से सम्पृक्त है।फलस्वरूप सदियों से शोषित, अस्पृश्य दलित वर्ग में अपनी स्थिति के प्रति आक्रोश है,उससे मुक्ति की छटपटाहट है, अवरोधक तत्वों के विरुद्ध या इसी स्थिति में जीने केलिए उन्हें विवश करने वालों के प्रति सशक्त विद्रोह का भाव है और इस विद्रोह को साकार रूप देने हेतु उनमें पनपी है- एकता। वह एकता जो किसी आन्दोलन की सही शक्ति होती है,सही माध्यम होती है। और उनमें तैयारी है एक लम्बी, दूरगामी लड़ाई की। तब तक , जब तक कि अनकी स्थिति बदले नहीं। और यह एक यज्ञ है। इस यज्ञ में हिन्दी कथाकारों की समिधा यही है कि वे इन्हीं के बीच से इन्हें एक ऐसा चरित्र दें जो इतिहास का हिस्सा बने, एक नए सौन्दर्य बोध की सृष्टि करे।

इस प्रकार हिन्दी साहित्य में मानवीय आंतरिक और बाह्य संवेदनाओं पर सूक्ष्मरूप में पकड रखनेवाले तथा दलित साहित्य हिन्दी के साथ वैश्विक साहित्य तक पहुँचानेवाले साहित्यकारों में ओमप्रकाश वाल्मिकि जी का नाम शीर्ष है।

संदर्भ

1. जाधव, सु. *हिन्दी साहित्य विविध आयाम.*
2. गौतम, मी. *अन्तिम दो दशकों का हिन्दी साहित्य.*
3. गुणशेखर. *दलित साहित्य का स्वरूप विकास और प्रवृत्तियाँ.*
4. ‘मीनू’, र. रा. *हिन्दी दलिता कविता.*
5. प्रसदा, म. *अम्बेडकर और दलित समाज.*
6. वियोगी, कु. *समकालीन दलित कहानियाँ.*